"करउ जतन जे होइ मिहरवाना"

करउ जतन जे होइ मिहरवाना ॥ (पृ. ५६२)

गुरबाणी में इस पंक्ति के दो हिस्से हैं –

१. **'करउ जतन'** तथा

२. **'होइ मिहरवाना'**

'करउ जतन' के भावार्थ स्पष्ट करने के लिए कुछ विचार पेश किये जाते हैं ।

सूर्य सदा **प्रकाशमान** है तथा इसकी धूप का प्रकाश आदि से ही सहज–स्वभाव हो रहा है ।

इस प्रकार यह **'प्रकाश'** –

इलाही देन है
अमित है
अथाह है
एक सार है
सदैव हो रहा है
सहज–स्वभाव है
उष्मा से परिपूर्ण है
सुखदायी है
जीवन दाता है
शक्ति दाता है
प्रकाश रूप है

अन्धकार – खण्डन है
पक्षपात रहित है
निर्मल है
सर्वव्यापी है

इस धूप के **प्रकाश के लिए** हमने कोई –
विचार नहीं किया ।
योजना नहीं बनायी ।
माँग नही की ।
परिश्रम नहीं किया ।
कीमत नहीं दी ।

यदि हम इस धूप की इलाही देन से **वंचित होते हैं, तब इसमें 'धूप'** या धूप के स्त्रोत **'सूर्य' का कोई दोष नहीं होता ।**

जब हम किसी कारणवश 'धूप' से **दूर हो जाते हैं, तब 'धूप' के सुखदायी गुणों से वंचित** हो जाते हैं । जब पुनः धूप के प्रकाश में अपने – आप को **पेश** करते हैं, तब फिर से 'धूप' की सुखदायी उष्मा **एवं** प्रकाश का लाभ उठाते हैं।

अन्धकार में से निकलकर अपने आप को धूप की उपस्थिति में पेश करना ही हमारा 'यत्न' है ।

जब हम अकाल पूरुष की **उपस्थिति अथवा 'याद'** में रहते हैं, तब हमें अकाल पुरुष की **समस्त दैवीय बख्शिशें सहज ही प्राप्त हो जाती हैं** तथा हम अलौकिक **इलाही उपस्थिति के रस का रंग तथा स्नेह अनुभव करते हैं ।**

इसके ठीक विपरीत जब हमारा मन अपने स्त्रोत 'अकाल पुरुष' से **विमुख होकर 'भूल' में विचरण करता है,** तब हम **समस्त इलाही बख्शिशों से वंचित हो जाते हैं** तथा **मायिकी भ्रम** के अन्धकार के कारण दुख – कलेश भोगते हैं ।

परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग ।।
वेमुख हाए राम ते लगनि जनम विजोग ।। (पृ. १३५)

जिसनो बिसरै पुरखु विधाता ।
जलता फिरै रहै नित ताता ।।
अकिरतघणै कउ रखै न कोई नरक घोर महि पावणा ।। (पृ. १०८६)

जा कउ बिसरै राम नाम ताहू कउ पीर ।। (पृ. २१२)

इस प्रकार **'प्रकाश का रस पान करना'** या इससे **'वंचित रहना'** हमारे **मूल 'यत्न' का ही परिणाम है,** या यूँ कह सकते हैं कि **'नाम–सिमरन'** ही **आत्मिक प्रकाश की 'गुप्तकुंजी' है ।** दूसरे शब्दों में अकाल पुरुष की **'याद'** अथवा **'सिमरन' ही, 'नाम' के प्रकाशमयी आत्मिक मंडल की दैवीय बख्शिशों के भण्डार की आत्मिक कुंजी है ।**

मन पिआरिआ जीउ मित्रा हरि नामु जपत परगासो ।। (पृ. ८०)

जिसु सिमरत सगला दुखु जाइ ।।
सरब सूख वसहि मनि आइ ।। (पृ. ११४८)

चीति आवै तां सहज घरु पाइआ ।। (पृ. ११४१)

परन्तु यहाँ पर एक अति गहन एवं जरुरी **'भेद'** को प्रकट करने की आवश्यकता है ।

अहम् के आधीन त्रिगुणों में किये गये **धार्मिक कर्म–क्रिया या कर्म–काण्ड** हमारे –

यत्न हैं	–	परिणाम नहीं
साधन हैं	–	पूर्णता नहीं
यात्रा है	–	मंजिल नहीं
ज्ञान है	–	प्रकाश नहीं
साधना है	–	गुरप्रसादि नहीं
सीढ़ी है	–	शिखर नहीं
पाठ्य क्रम है	–	डिग्री नहीं
क्रिया है	–	परिणाम नहीं
फल है	–	रस नहीं

फूल है — महक नहीं

बल्ब है — प्रकाश नहीं

दाते दाति रखी हथ अपणै जिसु भवै तिसु देई ।। (पृ. ६०४)

इहु पिरम पिआला खसम का जै भावै तै देइ ।। (पृ. ९४७)

परन्तु हम अपने अहम् के आधीन मायिकी चमत्मारों की चकाचौंध में इतने खोये हुए हैं **कि फल–दाता परमेश्वर को पूर्णतया भूल गये हैं तथा अपने अहम्–आधीन किये गये 'यत्न' को ही 'फल' समझते हैं ।**

जिचरु इहु मनु लहरी विचि है हउमै बहुतु अहंकारु ।।
सबदै सादु न आवई नामि न लगै पिआरु ।।
सेवा थाइ न पवई तिस की खपि खपि होइ खुआरु ।। (पृ. १२४७)

वास्तव में **यह फल आत्मिक देन है जो धुर से सतिगुरू द्वारा प्रदान की जाती है । इसमें हम अहम्–मयी जीवों का कोई दखल या शक्ति काम नहीं करती । यह तो केवल गुरप्रसादि (Grace) है ।**

जोरु न मंगणि देणि न जोरु ।। (पृ. ७)

तुधु विणु सिधी किनै न पाईआ ।।
करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ ।। (पृ. ९)

देवणवाले कै हथि दाति है गुरू दुआरे पाइ ।। (पृ. ३३)

जब माँ–बाप के घर बच्चे का जन्म होता है, तब वे अपने बच्चे के पालन–पोषण, खुशहाली, शिक्षा, विवाह, रोज़गार आदि की योजनाएँ बनाना शुरू कर देते हैं तथा सारी उम्र उसको 'शुभ–कामनाएं' एवं आशीर्वाद ही देते रहते हैं । देखा जाता है कि जन्म से पहले ही माँ, बच्चे के लिए दूध वाली बोतल (feeding bottle) तथा नैपकिनस (Napkins) आदि तैयार कर लेती है । इससे स्पष्ट होता हे कि माँ के गर्भ धारण करने के साथ ही, **बच्चे की भलाई की सोच एवं चिन्ता माँ के हृदय में 'उत्पन्न' हो जाती है** । इसका तात्पर्य यह है कि जीव के **'जन्म'** के साथ ही अकाल पुरुष के हुक्म अनुसार **जीव की**

‘भलाई’ के समस्त प्रबन्ध पहले ही प्रारम्भ हो जाते हैं । इस प्रकार ‘लिखिआ नाल’ (अन्तर्गत लिखित in-laid) **वाला ‘हुक्म’ जीव के जन्म, पालन–पोषण तथा भलाई के लिए** (creation, development and sustenance) **सम्पूर्ण त्रृटि–रहित तथा सहज–स्वभावतः प्रवृत्त है ।**

जिनि तूं साजि सवारि सीगारिआ ॥
गरभ अगनि महि जिनहि उबारिआ ॥
बार विवसथा तुझहि पिआरै दूध ॥
भरि जोबन भोजन सुख सूध ॥
बिरधि भइआ ऊपरि साक सैन ॥
मुखि अपिआउ बैठ कउ दैन ॥ (पृ. २६६)

इसी प्रकार पौधे के बीज में उसके उत्पन्न होने, प्रफुल्लित होने तथा नष्ट होने का **पूरा ‘हुक्म’ – उसके अन्तर्गत ही ‘नाल लिखिआ’ होता है ।**

यह **‘लिखिआ नाल’ वाला ‘हुक्म’** जीव के सांसारिक जीवन की खुशहाली के लिए ही पर्याप्त नहीं, बल्कि उसके **आत्मिक जीवन के लिए भी सहायक है ।** यह जीव को पुनः **अपने ‘निज घर’ की ओर प्रेरित करता है एवं मार्गदर्शन करता है,** ताकि वह इस **‘नाल लिखे (अन्तर्गत लिखे) हुक्म को बूझ कर इसके ‘अनुकूल’ (‘रज़ा में) चलना सीख ले ।**

यदि ‘जीव’ दुनिया में दुख–क्लेश भोगता है, तो इसका कारण यही है कि वह अपने इलाही माता–पिता **परमेश्वर को ‘भूल’ गया है । वह ‘नाल लिखे** (अन्तर्गत लिखे) **‘हुक्म’ की रज़ा में से निकलकर** अपने ‘अहम्’ के आधार पर, अपनी चतुराईयों द्वारा, **अपनी ही मनमर्जी में चलता है ।**

आपणै भाणै जो चले भाई विछुड़ि चोटा खावै ॥ (पृ. ६०१)

आपणै भाणै कहु किनि सुखु पाइआ
अंधा अंधु कमाई ॥ (पृ. १२८७)

जरूरी तथ्य यह है कि **'लिखिआ नाल हुक्म'** प्रत्येक जीव के लिए –

जीवन सेध है
निजी धर्म है
सम्पूर्ण इलाही कानून है
लोक सुखीया है
परलोक सुहेला है
अन्तरात्मा बीज है
अन्दर से प्रस्फुटित है
ओत–प्रोत समाया है
रवि रहिआ भरपूर है (कण–कण में विद्यमान) है
बाह्यमुख धर्मों से आजाद है
कर्म–काण्ड से दूर है
बुद्धि की सीमा से दूर है
बख्शिश है
गुरप्रसादि है
अबूझ है
अपार है
त्रुटि रहित है

उदाहरणतया समस्त वनस्पति के **बीजों** में **'नाल लिखे हुक्म' अनुसार प्रत्येक पौधा उगता, बढ़ता तथा प्रफुल्लित होकर फल देता है** । परन्तु इनकी टहनियों, पत्तियों तथा फलों के कद, रंग, स्वाद तथा उम्र में भिन्नता होती है ।

इस प्रकार वनस्पति या अन्य चौरासी लाख योनियों में सीमित बुद्धि होने के कारण वे अपनी चतुराई या उक्तियाँ–युक्तियाँ प्रयोग नहीं कर सकते । इसलिए वे **अपने अर्न्तगत लिखे 'हुक्म' में सहज एवं अनजाने ही** (unconsciously) **प्रवृत है तथा विचरण करते हैं ।**

चौरासी लाख योनियाँ अपने–अपने **'अर्न्तगत लिखे हुक्म की रजा' में चलते हुए भोलेपन में ही अपने केन्द्र 'परमेश्वर' की ओर अग्रसर होकर** अपरा जीवन मार्ग पूरा कर रहे हैं तथा उनकी **आत्मिक उन्नति सहज ही हो रही**

है (spontaneous evolution of souls) । यही उनका **अर्न्तमुखी 'साथ लिखवा हुआ निजी धर्म' है** । उनके कल्याण के लिए न किसी बाहरी धर्म या मजहब की आवश्यकता है, न ही किसी प्रचार की । यह योनियां **'हुक्म रजाई चलणा' अनुसार इलाही, अदृष्य, अटल, त्रुटि रहित अपना–अपना 'निजी धर्म' अनजाने** (unconsciously) **ही कमा रही हैं।**

यह योनियां न हिन्दु, न मुसलमान, न ईसाई तथा न मुसाई हैं । केवल अपने कर्त्ता द्वारा प्रदान किये गये चिन्हों में **अपना–अपना 'निजी धर्म' अथवा 'हुक्म' भोले भाव ही कमा रही हैं ।**

मनुष्य अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा 'मनमोहक' माया की **खोज एवं चमत्कारों** के रंग–रस में इतना गलतान हो गया है कि **अपने कर्त्ता 'परमेश्वर' तथा उसके साथ लिखे 'हुक्म' को पूर्णतया भूल गया है ।**

'हुक्म रजाई चलणा' के स्थान पर 'जीव' अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा 'मानसिक आजादी' का गलत एवं अनुचित प्रयोग कर रहा है, जिस कारण यह जीव त्रिगुणों के नियम 'जो मै कीआ सो मै पाइआ' (law of karma) अनुसार अपना किया स्वयं ही भोगता रहता है तथा इसका दोष 'भगवान' अथवा दूसरों पर लगाता है । इस प्रकार वह **अपने आप को धोखा देता है तथा रसातल की ओर बहता जाता है ।**

मनुष्य अपने **'परमेश्वर' को भूल गया है** तथा उसके सुखदायी **'नाल लिखे' हुक्म से बेखबर तथा विमुख हो गया है,** जिस कारण उसकी **'विछुड़ि चोटा खावे' वाली दुर्गति हो रही है।**

इस लिए **केवल मनुष्य–योनि को ही** –

१.आत्मिक 'माता–पिता' परमेश्वर के अस्तित्व की **याद दिलाने के लिए,**

२. 'हुक्म रजाई चलणा' की **शिक्षा देने के लिए,**

३.पुनः इलाही 'माता–पिता' परमेश्वर की स्नेहमयी तथा सुखदायी गोद की ओर प्रेरित करने के लिए आवश्यकता अनुसार, समय–समय पर, **भिन्न–भिन्न धर्म** अथवा मज़हब प्रकट हुए ।

इस तरह, अकाल पुरुष ने आदिकाल से ही समय–समय पर गुरू, अवतार,

साधू, संत, महापुरुष, गुरमुख – प्यारे दुनियां में प्रकट किए, जिन्होंने समय अनुसार अपने – अपने धर्म चलाए तथा **मानवता को 'धार्मिक जीवन' का मार्गदर्शन दिया ।** इस समस्त इलाही खेल (Divine scheme) में **अकाल पुरुष का अपने 'अंश' 'जीवों' के लिए अथाह प्रेम तथा शुभ भावना प्रकट होती है ।**

अंध कूप ते काढनहारा ।। प्रेम भगति होवत निसतारा ।।
साध रूप अपना तनु धारिआ ।। महा अगनि ते आप उबारिआ ।।

(पृ. १००५)

परन्तु यह बाहर का कर्म – काण्ड वाला धर्म बाहर से मन, बुद्धि तथा शरीर द्वारा ही–

सीखा – सिखलाया
समझा – समझाया
पढ़ा – पढ़ाया
धारण किया
साधना द्वारा कमाया

जाता है, जो **जीवों को त्रिगुण माया की 'सीमा' तक ही पहुंचा सकता है ।**

उपरोक्त समस्त विचार केवल **'करउ जतन'** तक ही सीमित है ।

अब हम **'होइ मिहरवाना'** की विस्तारपूर्वक विचार करेंगे ।

'होइ मिहरवाना' की खेल निराली है – जो केवल इलाही बख्शिश, गुरप्रसादि, नदर – करम, कृपा – दृष्टि (Divine grace) है ।

उपर बताया जा चुका है कि माँ के गर्भ – धारण (conception) करते ही, माँ के हृदय में आने वाले बच्चे की भलाई, पालन – पोषण तथा प्रफुल्लता के लिए अनेक योजनाएं तथा विचार आने शुरू हो जाते हैं ।

इसी प्रकार, हमारी 'इलाही माता' अथवा 'परमेश्वर' ने जब इस संसार की अपनी मौज में **'कवाओ' द्वारा रचना की तब उसके साथ ही साँसारिक जीवों**

की भलाई, पालन–पोषण तथा प्रफुल्लता के लिए पूर्ण त्रुटि–रहित एवं सदीवी इलाही –हुक्म' जारी कर दिया क्योंकि हम परमेश्वर की 'अंश' हैं।

ऐसे सुखदायी एवं कल्याणकारी **'इलाही हुक्म' में मनुष्य योनि के अतिरिक्त, बाकी समस्त योनियाँ अनजाने, भोलेपन में, सहज–स्वभाव ही विचरण कर रही है ।**

अकाल पुरुष ने **मनुष्य योनि** को अपने **'स्वरूप'** (own image) में बनाया है तथा इसको स्व–चिंतन (freedom of thoughts) की शक्ति तथा तीक्ष्ण बुद्धि (profound intelligence) प्रदान की है ।

'अहम्ग्रस्त' मनुष्य, माया के मनमोहक चमत्मारों में गलतान होकर **परमेश्वर की इन बहुमूल्य बख्शिशों, 'स्व–चिंतन' एवं 'तीक्ष्ण बुद्धि' की शक्तियों का गलत तथा उल्टा प्रयोग** (mis-use) **करता है । इस कारण वह अकाल–पुरुष के सुखदायी हुक्म तथा 'स्नेहमयी गोद' से अपने–आप को वंचित रखता है और वह 'आपणै भाणै जो चलै भाई विछुड़ि चोटा खावै' अनुसार दुख भोगता है ।**

यदि कोई बच्चा खो जाये, तब उसके माँ–बाप उसकी मोह–ममता में दुखी होकर तड़पते हैं। वे बच्चे की खोज के लिए अखबारों एवं रेडियो(radio) में घोषणा करते हैं कि यदि कोई उनके बच्चे की खबर देगा या ढूँढ देगा उसे इनाम दिया जायेगा ।

इसी प्रकार जब कोई 'जीव' माया के भ्रम के कारण, अपने कर्त्ता **अकाल पुरुष को 'भूल' कर विमुख हो जाये, तब 'सद बख्शिंद सदा मिहरवाना' अकाल पुरुष** को अपने भूले हुए बच्चों (prodigal sons) के लिए **दुख होता है।** इसी लिए परमेश्वर ने, ऐसे अनन्त माया में खोये हुए जीवों को मायिकी **'भवजल बिखम असगाह'** (अथाह सागर) **में से निकाल कर पुनः अपने 'निज घर' की ओर प्रेरित करने के लिए,** समय–समय पर गुरू, अवतार, साधू, सन्त, हरिजन, गुरुमुख–प्यारे संसार में भेजे। इन्होंने समय अनुसार भिन्न–भिन्न धर्म शुरू किये तथा वे अपनी–अपनी बाणी, **हमारी प्रेरणा तथा मार्ग–दर्शन के लिए**

छोड़ गये ।

उपदेसु करे गुरु सतिगुरु पूरा ।।
गुरु सतिगुर परउपकारीआ जीउ ।। (पृ. ९६)

तुम घर आवहु मेरे मीत ।।
तुमरे दोखी हरि आपि निवारे अपदा भई बितीत ।। (पृ. ६७८)

जगतु उधारन संत तुमारे दरसनु पेखत रहे अघाइ ।। (पृ. ३७३)

जगत उधारन साध प्रभ तिन्ह लागहु पाल ।। (पृ. ८११)

भूले हुए 'जीव' अथवा जिज्ञासू को अपने सुखदायी आत्मिक 'निज घर' की ओर प्रेरित करने में यदि कोई व्यक्ति **सहायता करे,** तब उस सहायक गुरुमुख प्यारे पर भी **सतिगुरु की बख्शिश होती है ।**

जनु नानकु धुड़ि मंगै तिसु गुरसिख की
जो आपि जपै अवरह नामु जपावै ।। (पृ. ३०६)

हउ सदके तिना गुरसिखां गुर सिख दे गुर सिख मिलाइआ ।।
(वा.भा.गु. १२/६)

गुरू नानक देव जी ने गुरसिक्खों के कल्याण के लिए दस बार शरीर धारण किया तथा अपनी कृपा द्वारा हमें 'गुरबाणी' का पल्लू पकड़ाया । यह जो गुरबाणी का पाठ, कीर्तन तथा कथा द्वारा प्रचार हो रहा है, यह सब **भूले हुए अथवा विमुख हुए जीवों के कल्याण के लिए सतिगुरु की मेहर तथा बख्शिश (Grace) है ।** आज के वैज्ञानिक (scientific) युग में यह गुरबाणी की दात रेडियो (radio) टेलीविज़न (T.V.) टेप रिकार्डर (tape recorder) तथा स्पीकर (speaker) द्वारा घर बैठे, चलते-फिरते तथा सोते हुए भी **सहज ही प्रदान की जा रही है।**

परन्तु **इतनी सुविधाओं के बावजूद भी हम इलाही बख्शिशों का पूरा लाभ नहीं उठाते** अपितु लापरवाही, अज्ञानता एवं मायिकी भ्रम में इनका **दुरुपयोग (mis-use) करते हैं जिस कारण हमारा जीवन** ओर भी गिरावट की ओर जा रहा है । इस का कारण स्पष्ट है कि परमार्थ अथवा **धर्म की ओर हमारी रूचि या यत्न (approach)** –

गलत (misguided)
नाम मात्र (superfluous)
अपूर्ण (imperfect)

है ।

दूसरे शब्दों में हमारे परमार्थ के मार्ग में यदि कोई त्रुटि – ढील या रुकावट आती है तो इसका तात्पर्य है कि हमने सतगुरू के हुकम 'करउ जतन' का पूर्णतया पालन नहीं किया । **हमारी साधना में ही कोई 'कमी' हो सकती है । सतिगुरू की बख्शिश तो धूप की भांति सद बख्शिंद सदा मेहरवान, अमिट, त्रुटिरहित, सदैव एवं एकसार व्याप्त है ।**

सदा सदा सदा दइआल ॥ (पृ. २७५)

साचा साहिबु सद मिहरबाण ॥ (पृ. ६१९)

सद बखसिंदु सदा मिहरवाना सभना देइ अधारी ॥ (पृ. ७१३)

गुर दइआलु सदा बखसिंदा ॥ (पृ. १०७४)

नानक प्रीतम क्रिपाल सदहूं किनै कोटि मधे जाते ॥ (पृ. १२७८)

हमारा **'प्रयत्न' तो सतिगुरू की उपस्थिति में पूर्ण श्रद्धा – भाव एवं प्रेम सहित अपने आप को 'पेश करना' या 'चरण शरण' जाना है ।**

दूसरी और, सतिगुरु अपनी अपार बख्शिश द्वारा **अन्नत तथा अमित ईलाही दातों की वर्षा सदा ही करते रहते हैं ।**

झिमि झिमि वरसै अंम्रित धारा ॥
मनु पीवै सुनि सबदु बीचारा ॥ (पृ. १०२)

तूं सचा दातारु नित देवहि चड़हि सवाइआ ॥ (पृ. १५०)

अणमंगिआ दानु दीजै दाते तेरी भगति भरे भंडारा ॥ (पृ. ४३७)

तूँ दाता दइआलु सभै सिरि
अहिनिसि दाति समारि करे ॥ (पृ. १०१४)

सतिगुरु मेरा सदा है दाता जो इछै सो फलु पाए ॥ (पृ. १३३३)

जिस प्रकार 'धूप' सूर्य का प्रकाश है, प्रीत–प्रेम–प्यार अकाल पुरुष का **'प्रकाश–रूप' है ।** इसी कारण परमेश्वर को बाणी में 'अति प्रीतम', 'प्रेम पुरुख', 'प्रिय' आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है ।

अति प्रीतम मनमोहना घट सोहना प्रान अधारा राम ॥ (पृ. ५४२)

प्रिअ प्रीति पिआरो मोरो ॥ (पृ. १३०६)

मूसन प्रेम पिरंम कै गनउ एक करि करम ॥ (पृ. १३६४)

यह बात याद रखने योग्य है कि हम 'जीव' परमेश्वर के अंश है तथा हमारे अन्दर **इलाही प्रीत, प्रेम, प्यार की 'चिंगारी' या 'किरण' प्रवृत्त है ।**

कहु कबीर इहु राम की अंसु ॥ (पृ. ८७१)

प्रेम–प्यार के प्रदर्शन एवं व्यवहार द्वारा ही प्यार की पूर्णता (fulfilment) होती है ।

इसलिए परमेश्वर ने अपने अथाह प्यार की पूर्णता के लिए यह सारी रचना रची है । उसमें परमेश्वर ने **इलाही प्यार का 'कण' या 'चिंगारी' रखी है** ताकि **परमेश्वर अपने 'अंश'–जीवों से प्यार कर सके** तथा उसकी अंश अपनी **'इलाही माँ' परमेश्वर के इलाही प्यार का जवाब** (response) **दे सके** तथा इस प्रकार **इलाही प्रीत, प्रेम, प्यार की पूर्णता को पा सकें ।**

यह प्रेम का **दैवीय आकर्षण** (cosmic attraction) **ही इलाही प्रीत, प्रेम, प्यार है ।** इससे सृष्टि का **कण–कण एक दूसरे की ओर खींचा जा रहा है** तथा **परमेश्वर के अंश, अपनी 'इलाही माँ' के इलाही प्यार के जवाब में परमेश्वर की ओर** किसी सूक्ष्म, सहज, अदृष्ट, त्रुटिहीन **'हुक्म की तार'** (divine pull) **से सहज स्वभावतः ही सरक रहे हैं । इसी के सहारे समस्त सृष्टि** युग–युगान्तरों से **'बंधी' हुई इलाही प्रवाह में बह रही है ।**

इसी इलाही आकर्षण (Divine pull) **की 'प्रीत तार' को ही 'नाम' या 'शब्द' कहा गया है तथा इसकी 'स्वचालित', 'सहज चाल' को ही 'हुक्म'**

कहा गया है । यह हुक्म सृष्टि के कण–कण में जीवन–रौं के रूप में सदैव प्रवृत्त है तथा इस सृष्टि को कायम रखता है । **यह 'प्रीत–तार' 'प्रेम–स्पर्श' या नाम की 'प्रेम–टुंबनी' (नाम में भाव विभोरता) ही गुरप्रसादि अथवा होइ मिहरवाना** (grace) **है ।**

परन्तु हमारा अहम्‌वादी मन परमेवर द्वारा प्रदान की बुद्धि से उक्तियाँ, युक्तियाँ, चतुराइयाँ आदि दिखाता हुआ **अपने ही भाणे (मनमर्जी) में प्रवृत्त होता है तथा 'लिखिआ नाल' (अन्तर्गत लिखे) हुक्म से विमुख होकर इलाही 'प्रीत–तार' से टूट जाता है । इस** तरह **'इलाही माँ' की स्नेहमयी गोद के प्यार, सुख एवं बख्शिशों से वंचित रहता है ।**

यदि बिजली की तार में कोई खराबी आ जाए, तब बल्ब (bulb) बुझ जाता है तथा हमें अन्धेरे में ठोकरें खानी पड़ती है । इसी प्रकार **हमारे मन की 'सुरति' की तार अन्तरात्मा में परमेश्वर के 'नाम' 'हुक्म' या जीवन–रौं से टूट जाये, तब हमारे मन पर अज्ञानता का अन्धकार छा जाता है तथा हम 'अहम्' के भ्रम–भुलाव में ठोकरें खाते एवं दुख–कलेश भोगते हैं ।**

जिस प्रकार 'सूर्य' की 'धूप' से दूर होकर, किसी कोठड़ी या गुफा (caves) में छुप जायें, जब धूप की उष्णता एवं प्रकाश से वंचित होकर अन्धकार में दुख भोगते हैं ।

यदि हम पुनः **अपनी इलाही 'माँ' की स्नेहमयी गोद का प्यार लेना चाहते हैं, तब अन्तर्मुखी होकर 'शब्द–सुरति' की तार द्वारा, अन्तरात्मा में इलाही 'हुक्म', 'नाम' या 'जीवन–रौं से जुड़ना अनिवार्य है ।**

या यूँ कहो कि यदि हम **भ्रम के अन्धकार में से निकलना चाहते हैं, तब हमें अहम् की 'अन्धेरी कोठड़ी' में से निकलकर, अपने–आप को 'नाम–रूपी' सूर्य के प्रकाश में प्रस्तुत करना पड़ेगा ।**

दूसरे शब्दों में, **'माया' को पीठ दिखाकर अपने मन का रुख 'इलाही–सूर्य' अथवा 'अकाल–पुरुष' की ओर करना पड़ेगा** अर्थात **विमुख हुए मन को गुरू के सन्मुख प्रस्तुत करना पड़ेगा ।** इसी को **'चरण–शरण जाना'** कहा

जाता है ।

सरणि गहीजै मानि लीजै करे सो सुखु पाईऐ ।। (पृ. ४५७)

नानकु पइअपै चरन जपै
ओट गही गोपाल दइआल क्रिपा निधे ।। (पृ. ४५६)

होवै त सनमुखु सिखु कोई जीअहु रहै गुर नाले ।।
गुर के चरन हिरदै धिआए अंतर आतमै समाले ।।
आपु छडि सदा रहै परणै गुर बिनु अवरु न जाणै कोए ।।
कहै नानकु सुणहु संतहु सो सिखु सनमुख होए ।। (पृ. ९१९)

चरन सरन गुर एक पैंडा जाइ चल
सतिगुर कोटि पैंडा आगे होइ लेते हैं ।। (क.भा.गु. १११)

यही हमारे लिए **'करउ जतन' है ।**

हम हर क्षण, दिन–रात तथा सारी उम्र किसी न किसी काम में व्यस्त रहते हैं परन्तु हमारे **सारे काम या 'जतन' त्रि–गुणी माया की गुलामी में ही होते हैं**

माइआ कारणि सद ही झूरै ।।
मनि मुखि कबहि न उसतति करै ।। (पृ. ८९३)

माइआ कारणि करै उपाउ ।।
कबहि न घालै सीधा पाउ ।। (पृ. ११५१)

माइआ कारनि स्रम अति करै ।। (पृ. १२५२)

कोई **विरला** व्यक्ति ही परमार्थ की रूचि रखता है तथा धर्म के लिए कोई 'जतन' या उद्यम करता है ।

विरले केई पाईअन्हि जिन्हा पिआरे नेह ।। (पृ. ९६६)

बिखिआ का सभु धंधु पसारु ।।
विरलै कीनो नाम अधारु ।। (पृ. ११४५)

गुरमति चलदे विरले बंदे ॥ (वा.भा.गु. २८/२०)

धार्मिक रूचि वाले व्यक्ति जो भी उद्यम या यत्न करते हैं वह सब नाम मात्र, अधूरे, गलत, फोकट अथवा **कर्म – काण्ड ही बन कर रह जाते हैं ।**

करम धरम सभि बंधना पाप पुंन सनबंधु ॥ (पृ. ५५१)

करम धरम पाखंड जो दीसहि जिन जमु जागाती लूटै ॥ (पृ. ७४७)

करम धरम लख जोग भोग लख पाठ पढ़ाई ।
आपु गणाइ विगुचणा ओहु थाइ न पाई ॥ (वा.भा.गु. २७/१८)

हमारा कर्त्तव्य या **'जतन' तो गुरबाणी के उपदेशों को समझना, बूझना तथा कमाना ही है ।**

'होइ मिहरवाना' अथवा सतिगुर की बख्शिश तो सहज ही तथा अवश्य ही हो रही है एवं होती रहेगी, जिस प्रकार सूर्य से धूप ।

'करउ जतन' की कमाई के लिए गुरबाणी हमारा इस प्रकार मार्गदर्शन, प्रेरणा एवं सहायता करती है –

अवरि काज तेरै कितै न काम ॥
मिलु साध संगति भजु केवल नाम ॥ (पृ. १२)

भाई रे रामु कहहु चितु लाइ ॥
हरिजसु खरचु लै चलहु सहु देखै पतीआइ ॥ (पृ. २२)

मेरे मन हरि हरि नामु धिआइ ॥
करि संगति नित साध की गुरचरणी चितु लाइ ॥ (पृ. ४७)

तजहु सिआनप सुरि जनहु सिमरहु हरि हरि राइ ॥
एक आस हरिमनि रखहु नानक दूखु भरमु भउ जाइ ॥ (पृ. २८१)

साजन संत करहु इहु कामु ॥
आन तिआगि जपहु हरिनामु ॥ (पृ. २९०)

याहू जतन करि होत छुटारा ।।
उआहू जतन साध संगारा ।। (पृ. २५९)

उदमु करहु वडभागीहो सिमरहु हरि हरि राइ ।।
नानक जिसु सिमरत सभ सुख होवहि
दूखु दरदु भ्रमु जाइ ।। (पृ. ४५६)

हरि कीरति साध संगति है सिरि करमन कै करमा ।। (पृ. ६४२)

करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत ।। (पृ. ६३१)

जन नानक कउ गुरि इह मति दीनी
जपि हरि भवजलु तरना ।। (पृ. ६७०)

जन नानक अनदिनु नाम जपहु हरि संतहु
इहु छूटण का साचा भरवासा ।। (पृ. ८६०)

केवलि नामु जपहु रे प्राणी तब ही निहचै तरना ।। (पृ. १३४९)